मार्च १९८८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित
विपश्यना संगोष्ठी - ८६
(क्रमशः IV)
विपश्यना पर शोध

४. संवेदनाओं का महत्व

मानव को उसके दुःखों से छुटकारा दिलाने में उसके शरीर पर होने वाली संवेदनाओं का विशेष महत्व है। बाह्य वस्तु और मानस में जागने वाली तृष्णा के बीच एक कड़ी रहती है जिसका सामान्य व्यक्ति को पता नहीं चलता। यह कड़ी शरीर पर होने वाली संवेदना है। जैसे ही किसी बाह्य वस्तु का स्पर्श शरीर की इंन्द्रियों से होता है अथवा मन में कोई भाव जागता है वैसे ही शरीर पर संवेदना पैदा होती है। यदि संवेदना सुखद लगे तो इसे देर तक बनाए रखना चाहते हैं। इसी प्रकार यदि दुःखद प्रतीत हो तो इससे जल्दी से जल्दी छुटकारा पा लेना चाहते हैं। इस प्रकार हम राग और द्वेष के बंधनों में बंधने लगते हैं जो प्राणिमात्र के दुःख का कारण है। **पटिच्चसमुप्पाद** में कहा गया है –

"फस्सपच्चया वेदना, वेदना पच्चया तण्हा"

अर्थात्, स्पर्श होने से संवेदना और संवेदना होने से तृष्णा जागती है। इस प्रकार हमारे दुःखो का कारण बाहर न होकर अपने भीतर पैदा होने वाली संवेदना है जिसके प्रति हम प्रतिक्रिया करते रहते हैं। अतः दुःख से छुटकारा पाने के लिए तृष्णा से छुटकारा पाना आवश्यक है और यह तभी संभव है जब शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को जानकर हम इनके प्रति न राग करें, न द्वेष बल्कि इनके अनित्य स्वभाव को समझते हुए इनके प्रति तटस्थ बने रहें।

जैसे व्योम में तरह तरह की आंधियाँ उठती हैं और कुछ समय बाद अपने आप बिखर जाती हैं, वैसे ही शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकार की संवेदनाएं प्रकट होती रहती हैं और फिर विनष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार संवेदनाएं सर्वथा अनित्य और निःसार हैं, इनके प्रति राग-द्वेष जगाना मानव के दुःख का मूल कारण है।

श्री जयन्तीलाल शाह ने बतलाया है कि **विपश्यना** से होने वाली चित्त-शुद्धि प्रथमतः शरीर पर होने वाली भिन्न-भिन्न प्रकार की संवेदनाओं अथवा अन्य संकेतों के रूप में प्रकट होती हैं, यथा –जलन, स्वेद, हाथ, पैर, छाती, आदि में ख़ूब हलन-चलन, क्रन्दन, चुभन, धड़कन, फड़कन, चींटी चलने जैसा, स्वास की गति में अन्तर, इत्यादि इत्यादि। आरम्भ में ये संवेदनाएं अधिकतर स्थूल रूप में प्रकट होती हैं पर कई शिविर लेने और घर पर नियमित अभ्यास करते रहने से ये सूक्ष्म संवेदनाओं में बदल जाती हैं। हर विपश्यना शिविर के बाद साधक पहले की अपेक्षा अधिक निर्मल होता जाता है और इस निर्मलता के फलस्वरूप मन में प्रसन्नता छाई रहती है।

श्री देशबन्धु गुप्ता का कथन है कि हमारे पूर्वजों ने तन और मन की आपसी प्रतिक्रिया से शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को वैज्ञानिक ढंग से समझने का प्रयत्न किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यदि इन संवेदनाओं के प्रति कोई प्रतिक्रिया न की जाय तो इनके प्रभाव को क्षीण किया जा सकता है और इस प्रकार इनसे पैदा होने वाले संस्कारों से छुटकारा पाया जा सकता है। यह खोज ही विपश्यना साधना कहलाती है जिसके द्वारा हम मानस के प्रतिक्रिया करने वाले स्वभाव को बदल सकते हैं। **विपश्यना** का अर्थ ही है जो वस्तु जैसी हो उसे वैसे ही जानना, न कि जैसे वह प्रतीत होती हो। इस साधना के द्वारा हम अचेतन चित्त के अंध प्रतिक्रिया करने वाले स्वभाव को शनैः शनैः बदल सकते हैं।

५. "सति" और "सतिपट्ठान"

संवेदनाओं की सम्पूर्ण जानकारी के लिए चोरों आर्य सत्यों का वास्तविक बोध होता है।

महासतिपट्ठान सुत्त में चार प्रकार की **विपश्यना** का उल्लेख किया गया है – कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना, तथा धम्मानुपश्यना। वहां पर भले ही इन चारों की व्याख्या पृथक पृथक की गई है परन्तु साधना करते समय वे सब एक दूसरे की पूरक बन जाती हैं। **सतिपट्ठान** से अपने बारे में जो सच्चाई है उसका, बिना किसी पूर्वाग्रह के, प्रत्यक्ष भान होने लगता है।

भगवान ने बार-बार यह उपदेश दिया है कि अपने बारे में सम्पूर्ण जानकारी बनाए रखते हुए विचरण करो **सतो, भिक्खवे, भिक्खु विहरेय्य संपजानो**। कई टीकाकार **संपजातो** तथा **सतो** समानार्थक मानते हैं अर्थात् **संपजानो** का अर्थ **सजगता** तथा **सतो** को समानार्थक मानते हैं अर्थात् **संपजानो** का अर्थ **सजगता** से ही लेते हैं। परन्तु प्राचीनतम ग्रन्थों का गम्भीर अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि **संपजानो** का यह संकुचित अर्थ नहीं है बल्कि **प्रज्ञा वाले ज्ञान** wisdom से है। ऐसा व्यक्ति न केवल शरीर का चलना-फिरना, उठना-बैठना, नहाना-धोना आदि ही जानता है बल्कि शरीर के भीतर होने वाले उदय-व्यय को भी जानता रहता है। इस प्रकार संपजञ्ञ अर्थात् अंतर्मन की गहराइयों में अपने अनित्य स्वभाव को जानना है। यह **सति** का पर्यायवाची न होकर इसका पूरक है। जब **सति** और **संपजञ्ञ** मिल जाते हैं तब **सतिपट्ठान** कहलाता है, अर्थात् **सति** (सजगता) का प्रतिष्ठापित होना, जिससे दुःखों से पूर्णतया मुक्त होने का मार्ग मिल जाता है।

प्रो. मेश्राम ने संकेत दिया है कि सतिपट्ठान का अभ्यास वैज्ञानिक ढंग से किया जाना चाहिए। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि विशुद्धि का मार्ग लम्बा है और इसे जल्दी से तय कर डालने का कोई तृष्णा मन में नहीं जगानी चाहिए। वस्तुतः तृष्णा ही दुःख का कारण है। इस मार्ग पर चलते चलते भले ही सिद्धियां भी प्राप्त होने लगें परन्तु इनकी लालसा करना अथवा इन्हें प्रदर्शित करना उचित नहीं है। सयाजी ऊ बा खिन के मतानुसार यह युग चमत्कार दिखलाने का नहीं है कि कैसे हवा में उड़ सकते हैं अथवा पानी पर चल सकते हैं क्योंकि इससे जनसाधारण को प्रत्यक्षतः कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। परन्तु यदि इस साधना के फलस्वरूप मानसिक अथवा शारीरिक रोग दूर होते हों तो ही कुछ काम की बात कही जा सकती है।

डॉ. नथमल टाटिया ने अंगुत्तर निकाय के हवाले से **समथ** और **विपश्यना** की समीक्षा करते हुए इन्हें **दूत-युग** अर्थात दो दूतों की संज्ञा दी है जो सत्य के संदेशवाहक हैं और निर्वाण तक ले जाते हैं। **समथ** का उद्देश्य मन को विक्षेप-विहीन करके समाधि में पुष्ट करना और **विपश्यना** का उद्देश्य यथाभूत ज्ञानदर्शन है, अर्थात शरीर वा चित्त के स्तर पर जो अनुभूती हो रही हो उसे प्रज्ञापूर्वक जानना। ये दोनों मिलकर निर्वाण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। आनापान की साधना **समथ** की ओर ले जाती है और सतिपट्ठान **विपश्यना** की ओर ले जाता है। प्राणियों की विशुद्धि के लिए यही एक मार्ग है –**एकायनो अयं, भिक्खवे, मग्गो सत्तानं विसुद्धिया...**

६. मेत्ताभावना -

मेत्ताभावना विपश्यना साधना की नैसर्गिक परिणति है। इससे सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव जागने लगता है। **विपश्यना** साधना द्वारा मन में निर्मलता आने से जो सुख अनुभव होता है उसमें सभी प्राणियों को सहभागी बनाया जाता है। इससे सारा वातावरण मैत्री एवं सद्भाव की तरंगों से तरंगित होने लगता है। यह समझ लेना चाहिए कि मैत्रीभावना किसी बाह्य सत्ता अथवा शक्ति के निमित्त की गई प्रार्थना नहीं है कि वह आकर हमारा कल्याण कर जाए। जैसे-जैसे **विपश्यना** के अभ्यास से मैत्रीभावना प्रबल होती जाती है वैसे-वैसे **ब्रह्मविहार** पुष्ठ होने लगता है, अर्थात् अनन्त मैत्री, अनन्त करुणा, अनन्त मुदिता एवं अनन्त उपेक्षा (समता) का भाव जागने लगता है।

प्रो. (श्रीमती) लिली डी'सिल्वा के अनुसार "मैत्रीभावना" से यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि एक कोने में शांति से बैठ जाए और बार-बार यह कहते रहें –**सारे प्राणी सुखी हों!** यह भाव तो अन्तर्मन की गहराइयों से उदय होकर निःसरित होना चाहिए।

अंतर्मन से निकली हुई **मैत्रीभावना** कितनी हृदय-द्रावक हो सकती है इसका प्रमाण डॉ. रामगोपाल ने प्रस्तुत किया है। उनके अनुभव के अनुसार जब कल्याणमित्र गोयन्का जी शिविर-समापन के समय मंगल-मैत्री देते हैं और इस अवसर पर जब वे उनके द्वारा जानबूझकर अथवा अनजाने में किसी को भी आघात पहुंचाया गया हो उनसे क्षमायाचना करते हैं और अपने संचित पुण्य में सबको भागीदार बनाते हैं, तो उस समय आंसुओं की झड़ी लग जाती है क्योंकि एक ओर तो वर्तमान युग में बिना किसी स्वार्थ के कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को एक छदाम भी देना नहीं चाहता और यहां विपश्यना के आचार्य हैं जो निःस्वार्थ भाव से अपने सभी जन्मों की पुण्य-सम्पदा में प्राणिमात्र को भागीदार बनाने के लिए आतुर हैं!

विदेशों में विपश्यना

कनाडा के सहायक आचार्य एवं अंग्रेजी के प्रोफेसर श्रीयुत बिल हार्ट ने बतलाया है कि पश्चिमी देशों के लोगों ने सन १९७० से भारतवर्ष में कल्याणमित्र गोयन्काजी द्वारा संचालित विपश्यना शिविरों में भाग लेना आरम्भ किया। जब वे लाभान्वित होकर अपने देशों में लौटे तब उन्होंने वहां विपश्यना की गतिविधियों को आरम्भ किया। परन्तु पश्चिम में नियमित रूप से विपश्यना शिविर सन् १९७१ से ही लगाने आरम्भ हुए, जबकि आचार्य गोयन्काजी फ्रांस में स्वयं प्रथम दो शिविर लेने के लिए पहुंचे। आचार्य श्री प्रतिवर्ष पाश्चात्य देशों में शिविर लेने जाते हैं। वे अभी तक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, इग्लैंड, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, जापान, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड जा चुके हैं। इनमें से अनेक देशों में विपश्यना के प्रचार-प्रसार हेतु ट्रस्ट गठित हो चुके हैं और स्थाई केन्द्रों की स्थापना हो चुकी है, जहां यत्र तत्र वर्ष भर कोर्स चलते रहते हैं। सन् १९८२ से आचार्य गोयन्काजी ने अनेक पुराने साधकों को शिविरों के संचालन हेतु अपना सहायक नियुक्त किया है। विदेशों में विपश्यना सम्बन्धी गतिविधियों की जानकारी दिलाने के लिए मैसाच्यूसेट्स (अमेरिका) से अंग्रजी में त्रैमासिक **न्यूजलैटर** प्रकाशित होता है। इसके क्षेत्रीय संस्करण यूरोप, ऑस्ट्रेलिया तथा जापान से निकलते हैं।

प्रो. थीओडॉर एम. वेस्टल ने व्यक्त किया है कि अमेरिकन लोग इस बात में विश्वास करते हैं कि विचारों के मंच पर विभिन्न सिद्धान्तों की प्रतिस्पर्धा में अन्ततोगत्वा सच्चाई की जीत होगी। इस प्रतिस्पर्धा में विपश्यना की मौजूदगी भी जानी जाने लगी है। यह साधना पद्धति चित्तशुद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है। इसीलिए पिछले १५ वर्षों में विपश्यी साधकों की संख्या बढ़ी है। फिर भी लेखक का मत है कि अमेरिका में विपश्यना को और अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए पालि के शब्दों का मानक अंग्रेजी में अनुवाद उपलब्ध करवाना चाहिए। और एलेन वाट्स के समान व्यक्तित्व वाले किसी अमेरिकन को इसके प्रचार का बीड़ा उठाना चाहिए। लेखों, भाषणों, टेलीविजन आदि के माध्यम से इसकी सही जानकारी अधिकाधिक लोगों तक पहुंचना बहुत आवश्यक है। अमेरिका में प्रचार के माध्यमों में सही बात को बहुत सराहा जाता है।

उपसंहार

स्व. डॉ. ऊ.धम्मरतन ने लिखा है कि सारे विश्व में बेचैनी फैल रही है। इसे दूर करने के लिए यह साधना बहुत उपयोगी है। इसीलिए लोग इसमें विशेष रुचि लेने लगे हैं। भगवान बुद्ध के २५०० वें महापरिनिर्वाण के समय से (अर्थात् सन् १९५६ से) धर्म के व्यावहारिक पक्ष (पटिपत्ति) की ओर अनेक देशों में चेतना जागृत हुई है। इसी अवधि में विपश्यना साधना, जो पिछली कई शताब्दियों से लुप्तप्राय थी, का पुनरुत्थान हुआ है।

विपश्यना से लाभान्वित होकर श्री लक्ष्मीचन्द केनिया, युवक इंजीनियर ने अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा है कि मेरे जीवन के सर्वोत्कृष्ट दस दिन वही थे जब मैंने विपश्यना का प्रथम शिविर लिया। उन्होंने हर किसी को आह्वान किया है कि वह जल्दी से जल्दी दस दिन के शिविर में बैठे जिससे वह भी जीवन के दस सर्वोत्कृष्ट दिन यापन कर सकें।